हरित क्रांति और रिछारिया की चेतावनी

सुनील

एक समय में हरित क्रांति को भारत का खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने और गांवों में समृद्धि लाने की एक सफल योजना व रणनीति के रूप में खूब वाहवाही मिली थी। अब इसकी सीमाएं, असफलताएं और गलतियां दिखाई दे रही हैं। कई तरह के मोटे अनाजों और दालों की कीमत पर गेहूं और चावल की पैदावार बढ़ाने पर यह केन्द्रित थी, किन्तु अब इन फसलों की उत्पादकता में भी ठहराव आ गया है। उतनी ही पैदावार लेने के लिए ज़्यादा रासायनिक खाद डालना पड़ रहा है। कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है और किसानों को काफी मात्रा में नए-नए कीटनाशकों का इस्तेमाल करना पड़ता है। पानी के भारी उपयोग के कारण भूजल का स्तर तेज़ी से नीचे जा रहा है। बार-बार ज़्यादा नीचे तक बोरिंग करना पड़ रहा है। इन सब कारणों से लागतें बढ़ रही हैं और जोखिम भी बढ़ रहा है। किसानों पर भारी कर्ज़ चढ़ता जा रहा है और बीच-बीच में सरकार द्वारा कर्ज़माफी करने पर भी उनकी कर्ज़दारी खत्म नहीं हो रही है। पिछले कुछ सालों से वे बड़ी संख्या में आत्महत्या कर रहे हैं।

भारतीय खेती के इस संकट की जड़ें खेती की उस पद्धति व टेक्नॉलॉज़ी में हैं, जिसे साठ-सत्तर के दशक में हरित क्रांति के तहत अपनाया गया था। अब देशी बीजों के संरक्षण और जैविक या प्राकृतिक खेती की तरफ ध्यान जा रहा है। खुद सरकारें भी अब जैविक खेती की बातें करने लगी हैं। सवाल यह है कि सरकार को यह बात उस समय क्यों नहीं समझ में आई कि हम गलत टेक्नॉलॉज़ी अपना रहे हैं? थोड़ी खोजबीन करने पर पता लगता है कि कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने इसके बारे में चेतावनी दी थी। किन्तु भारत के सरकारी प्रतिष्ठान ने ऐसी आवाजों को अनसुना ही नहीं किया, बल्कि दबाने की भी कोशिश की। ऐसी ही एक आवाज थी कृषि वैज्ञानिक डॉ. रिछारिया की।

मूलतः मध्यप्रदेश के होशंगाबाद ज़िले के नंदरवाड़ा गांव के निवासी डॉ. राधेलाल हरलाल रिछारिया साठ-सत्तर के दशक में भारत के चोटी के कृषि वैज्ञानिकों में से थे। डॉ. रिछारिया 1959 से 1967 तक कटक स्थित केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान के निदेशक थे। उनके नेतृत्व में वहां के वैज्ञानिक चावल की देशी किस्मों के आधार पर उत्पादन बढ़ाने के महत्वपूर्ण अनुसंधान में लगे थे। उसी समय विश्व बैंक, रॉकफेलर फाउंडेशन और फोर्ड फाउंडेशन के सहयोग से मनीला में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की स्थापना हुई। इसके द्वारा भारत में धान की ज़्यादा पैदावार देने वाली जिन किस्मों का प्रचलन करने का प्रस्ताव किया गया था, डॉ. रिछारिया ने उनका विरोध किया था। उन्होंने कहा था कि इन किस्मों से भारत की धान की खेती में नये वायरस, कीड़े एवं अन्य रोग फैलेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि भारतीय परिस्थितियों में विदेशी बौनी किस्में उपयुक्त नहीं हैं और इनके प्रचलन में जल्दबाज़ी न करें। उनका यह भी कहना था कि हमारी देशी किस्मों से भी धान की पैदावार बढ़ाई जा सकती है। डॉ. रिछारिया ने इस बात पर भी आपत्ति की थी कि इस संस्थान के कार्यक्रमों के तहत कुछ कृषि वैज्ञानिक बिना अनुमति के भारत के धान का जर्म प्लाज़्म को बाहर ले जा रहे हैं तथा बाहर से बिना क्वारंटाइन जांच के धान का जर्म प्लाज़्म ला रहे हैं। लेकिन इस वरिष्ठ वैज्ञानिक की चेतावनियों व आपत्तियों को दरकिनार कर दिया गया। इतना ही नहीं, उन्हें केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान के निदेशक पद से भी हटा दिया गया। उनके नेतृत्व में चल रहा चावल की देशी किस्मों के विकास का काम भी रुक गया।

1971 में तत्कालीन मध्यप्रदेश सरकार ने उन्हें मध्यप्रदेश का कृषि सलाहकार नियुक्त किया और उनके नेतृत्व में रायपुर में म.प्र.चावल अनुसंधान संस्थान शुरू किया गया। डॉ. रिछारिया ने पांच वर्ष तक मेहनत करके छत्तीसगढ़ के कोने-कोने से, आदिवासी इलाकों से, धान की 17,000 किस्मों का अद्‌भुत संग्रह किया। धान की देशज किस्मों के आधार पर अनुसंधान फिर से चलने लगा। किन्तु इससे उन

अंतर्राष्ट्रीय ताकतों को फिर खतरा पैदा हुआ, जो धान एवं गेहूं की विदेशी किस्मों वाली नई खेती को चलाना चाहते थे, जिससे रासायनिक खाद, कीटनाशकों और कृषि मशीनों का उनका धंधा भारत में बढ़ सके।

पहले प्रस्ताव आया कि चावल के जर्म प्लाज़्म का यह संग्रह मनीला के अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान केंद्र को दे देना चाहिए, जो इसको सुरक्षित रख सकेगा। डॉ. रिछारिया ने इसका विरोध किया। मनीला संस्थान से जर्म प्लाज़्म के लेनदेन एवं साझेदारी के बारे में भी डॉ. रिछारिया की कुछ शंकाएं थी। तब राह के इस रोड़े को हटाने के लिए एक और साज़िश हुई। मध्यप्रदेश में चावल अनुसंधान के लिए 4 करोड़ रुपए की अंतर्राष्ट्रीय मदद आई, किन्तु इस शर्त के साथ कि कृषि अनुसंधान में दो जगह काम के कारण हो रहा दोहराव बंद होना चाहिए। डॉ. रिछारिया वाला म.प्र. चावल अनुसंधान संस्थान 1976 में बंद कर दिया गया और चावल-किस्मों का उसका पूरा संग्रह रायपुर के कृषि विश्वविद्यालय को हस्तांतरित कर दिया गया। बाद में पता चला कि इसके कुलपति खुद मनीला संस्थान के न्यासी मंडल के सदस्य थे। उधर डॉ. रिछारिया फिर सड़क पर आ गए। वे काफी परेशान और व्यथित रहे। वे इतने बड़े कृषि वैज्ञानिक थे कि कटक के बाद दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक के सर्वोच्च पद पर पहुंचते। लेकिन देश हित और देश के किसानों के हितों से समझौता न करने के कारण उन्हें बार-बार निकाल फेंका गया। यदि उनकी चेतावनियों को सुना जाता, और उनके जैसे वैज्ञानिकों को देशज किस्मों के आधार पर पैदावार बढ़ाने की तकनीकों पर काम करने दिया जाता, तो शायद भारत की खेती आज इस गहरे संकट में न फंसती।

असुरक्षित और कमज़ोर किस्मों के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों, पानी का भारी प्रयोग, भारी पूंजी व बढ़ती लागत, इसके बावजूद बढ़ते रोग और बढ़ता जोखिम, घटती या थमी हुई उत्पादकता, भारतीय खेती और भारतीय किसान इस गहरे दुष्चक्र में फंस गए हैं। जो लोग यह भोला तर्क देते हैं कि हरित क्रांति की टेक्नॉलॉजी न अपनाई होती तो भारत का खाद्य उत्पादन नहीं बढ़ता और भारत भूखा मर जाता, उन्हें डॉ. रिछारिया का पूरा किस्सा पढ़ना चाहिए, जिसे स्वतंत्र पत्रकार भारत डोगरा ने एक किताब के रूप में प्रकाशित किया है। इससे ज़ाहिर होता है कि भारत के वैज्ञानिकों को अपने स्तर पर देश हित में स्वतंत्र शोध, अनुसंधान एवं आविष्कार की दिशा में आगे बढ़ने ही नहीं दिया गया, नहीं तो हम अपनी देशी किस्मों के आधार पर भी कृषि उत्पादन बढ़ा सकते थे। विज्ञान एवं ज्ञान की हर शाखा में रिछारिया जैसे कई लोग रहे होंगे, जिन्हें स्वतंत्र रूप से काम नहीं करने दिया होगा और कुंठित कर दिया गया होगा, जिनकी कहानी सामने नहीं आई है।

कहने का मतलब यह नहीं है कि हमें विदेशों से सहयोग और आदान प्रदान नहीं करना चाहिए। मगर यह अपनी शर्तों पर और अपने हितों को ध्यान रखते हुए करना चाहिए। इस मामले में लगभग 90 साल पहले महात्मा गांधी ने लिखा था, "मैं चाहता हूं कि सब जगह की संस्कृतियों की हवा मेरे मकान के अंदर स्वतंत्रतापूर्वक बहती रहे। किन्तु मैं ऐसी हवा नहीं चाहता कि मेरे पांव ही उखड़ने लगें।"

किन्तु ऐसा लगता है कि न तो गांधी की इस शिक्षा से और न रिछारिया प्रकरण से हमने कोई सबक लिया है। दूसरी हरित क्रांति के नाम पर जल्दबाज़ी में बिना जांचे-परखे जीन-संशोधित बीजों को अनुमति देकर हमारी सरकारें वही गलती कर रही हैं जो चालीस साल पहले की थी। कई वैज्ञानिकों की चेतावनियों को नज़रअंदाज़ किया जा रहा है। कुछ वर्ष पहले अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश की भारत यात्रा के मौके पर कृषि अनुसंधान के लिए भारत-अमरीकी संयुक्त पहल शुरू करने की घोषणा की गई थी। इसकी समिति में मोनसेन्टो जैसी अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रतिनिधि शामिल हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक डॉ. मंगला राय को इसका सचिव बनाया गया था। ज़ाहिर है, यह भारत के कृषि अनुसंधान, नीतियों व योजनाओं को अमरीकी कंपनियों के हितों के मुताबिक संचालित करने का स्पष्ट कदम है। क्या पुरानी गलतियों से हम सबक लेंगे? क्या रिछारिया जैसे देशभक्त वैज्ञानिकों का संघर्ष बेकार जाएगा? ये सवाल आज देश के लोगों के सामने हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***